Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 11, Issue 3&4 - 2026, Pg. No. 77-85
Peer Reviewed Journal

Review Article

आधुनिक शिक्षा और छात्र संवेग: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दीपक कुमार[1], विकास कुमार[2]
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक, इतिहास विभाग, एस॰ एस॰वी॰ कॉलेज, हापुड़, उत्तर प्रदेश, भारत
[2]शोध छात्र इतिहास विभाग, चौ॰ चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत
DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202625

I N F O

Corresponding Author:
विकास कुमार, शोध छात्र इतिहास विभाग, चौ॰ चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत |
E-mail Id:
vk210461@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/0009-0008-2325-822X
How to cite this article:
दीपक कुमार, विकास कुमार, आधुनिक शिक्षा और छात्र संवेग: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, Anu: a, Mul, Int, Jour, *2026*; 11(3&4): 77-85.

Date of Submission: 2026-09-18
Date of Acceptance: 2026-10-20

A B S T R A C T

प्रस्तुत शोध पत्र माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा व्यवस्था में हो रहे तीव्र आधुनिकरण, डिजिटल रूपांतरण, तथा वैश्वीकृत पाठ्यक्रम पद्धतियों के आलोक में किशोरावस्था के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता और संपूर्ण व्यक्तित्व विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने जहाँ एक ओर तकनीकी दक्षता, सूचना तक पहुँच और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के नवीन द्वार खोले हैं, वहीं दूसरी ओर इसके तीव्र और असंतुलित क्रियान्वयन ने किशोरों के आंतरिक मनोविज्ञान, संवेगात्मक संतुलन और सामाजिक-पारस्परिक संबंधों में गंभीर असंतुलन और चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। किशोरावस्था मानव जीवन का वह संवेदनशील पड़ाव है जहाँ शारीरिक बदलावों के साथ-साथ पहचान निर्माण और संवेगात्मक स्थिरता का निर्धारण होता है। इस अवस्था में आधुनिक शिक्षा का अति-प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश, डिजिटल उपकरणों पर अत्यधिक निर्भरता, एल्गोरिदम-संचालित सामाजिक माध्यमों का दबाव, और पारंपरिक पारिवारिक-सामाजिक मूल्यों का क्षरण विद्यार्थियों को गंभीर मानसिक तनाव, एकाकीपन, चिंता, और पहचान के संकट की ओर धकेल रहा है। यह अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसके अंतर्गत माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के दैनिक व्यवहार, शैक्षणिक दबाव, और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों का व्यावहारिक मूल्यांकन किया गया है। शोध के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि आधुनिकरण ने शिक्षा को 'ज्ञान' और 'चरित्र निर्माण' की प्रक्रिया के स्थान पर केवल 'परिणाम' और 'तकनीकी कौशल' तक सीमित कर दिया है, जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों में आत्म-नियंत्रण, सहनशीलता, सहानुभूति और संवेगात्मक दृढ़ता जैसे मौलिक गुणों का ह्रास हो रहा है। शोध पत्र में यह भी रेखांकित किया गया है कि भारतीय शिक्षा दर्शन के क्लासिकीय मूल्यों तथा भारतीय शिक्षाविदों के विचार-बिंदुओं के समन्वय द्वारा ही इस संकट का स्थाई समाधान संभव है क्योंकि शिक्षा का अंतिम लक्ष्य केवल अकादमिक सफलता प्राप्त करना नहीं, बल्कि एक संतुलित, संवेगात्मक रूप से परिपक्व और चरित्रवान व्यक्तित्व का निर्माण करना है।

मुख्य शब्द: आधुनिकरण, व्यक्तित्व विकास, किशोरावस्था, माध्यमिक शिक्षा, पहचान का संकट, मानसिक तनाव।

Copyright (c) 2026: Author(s). Published by Advanced Research Publications

प्रस्तावना

समकालीन युग में शिक्षा केवल सूचना और ज्ञान के हस्तांतरण का माध्यम नहीं रह गई है, बल्कि यह तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों की प्रयोगशाला बन चुकी है। माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा का चरण मानव जीवन के विकासक्रम में सर्वाधिक संवेदनशील और निर्णायक मोड़ होता है जहाँ विद्यार्थी बाल्यावस्था की अनभिज्ञता से निकलकर प्रौढ़ावस्था की उत्तरदायी दुनिया में प्रवेश करने की तैयारी करता है। इसी चरण में उसकी संवेगात्मक परिपक्वता का आधार निर्मित होता है और व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम—जैसे संज्ञानात्मक, सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक—आकार लेते हैं। किंतु, 21वीं सदी में शिक्षा के क्षेत्र में आए अभूतपूर्व आधुनिकरण ने इस संपूर्ण विकासात्मक प्रक्रिया के सम्मुख जटिल प्रश्न और बहुआयामी चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। आधुनिकरण का तात्पर्य केवल डिजिटल पट्टों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इंटरनेट शिक्षण मंचों और वैश्विक पाठ्यक्रमों के समावेशन तक सीमित नहीं है; बल्कि इसने विद्यार्थियों की जीवनशैली, सोचने की प्रक्रिया, और मूल्य-प्रणाली को भी आमूल-चूल बदल दिया है। एक ओर जहाँ इस आधुनिकरण ने विद्यार्थियों के क्षितिज को विस्तृत किया है और उन्हें ज्ञान के वैश्विक भंडार से जोड़ा है, वहीं दूसरी ओर इसने उनके भीतर एक अनाम बेचैनी, एकाकीपन और संवेगात्मक अस्थिरता को जन्म दिया है। अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, निरंतर मूल्यांकन का डर, डिजिटल तंत्र की आभासी दुनिया में वास्तविक पहचान का खो जाना, और भौतिकवादी सफलता की अंधी दौड़ ने किशोरों के मन-मस्तिष्क को अत्यधिक बोझिल कर दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के इस आधुनिक दौर का केवल अकादमिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना होता है, जिसमें संवेगात्मक परिपक्वता की केंद्रीय भूमिका होती है। जब तक विद्यार्थी अपनी भावनाओं को समझने, उनका प्रबंधन करने और विपरीत परिस्थितियों में संतुलित रहने में सक्षम नहीं होगा, तब तक कोई भी तकनीकी दक्षता उसे एक सफल और सुखी मनुष्य नहीं बना सकती, और प्रस्तुत अध्ययन इसी ज्वलंत विषय का गहराई से विश्लेषण करने तथा भारतीय संदर्भ में इसके संभावित समाधान खोजने का एक निष्पक्ष प्रयास है।

डिजिटल अति-निर्भरता और संवेगात्मक अलगाव

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा में आधुनिक तकनीक के समावेश ने अध्ययन-अध्यापन के तौर-तरीकों में क्रांतिकारी बदलाव किया है, जहाँ डिजिटल पट्टों, संगणक पट्टियों और इंटरनेट अधिगम मंचों के प्रयोग ने सूचनाओं की प्राप्ति को त्वरित और सुलभ तो बनाया है, परंतु इसने विद्यार्थियों को स्क्रीन की आभासी दुनिया का बंदी भी बना दिया है। किशोरावस्था वह समय होता है जब प्रत्यक्ष मानवीय अंतःक्रिया के माध्यम से संवेदनाओं, सहानुभूति और परस्पर सहभाव का विकास होता है, किंतु आधुनिक शिक्षण पद्धतियों के कारण विद्यार्थियों का अधिकांश समय डिजिटल उपकरणों के साथ व्यतीत हो रहा है, जिससे उनका वास्तविक सामाजिक संपर्क सिमटता जा रहा है और वे 'डिजिटल एकांत' या 'संवेगात्मक अलगाव' के शिकार हो रहे हैं। स्क्रीन आधारित अध्ययन और निरंतर इंटरनेट पर रहने की प्रवृत्ति से किशोरों के मस्तिष्क में जैविक रसायनों का चक्र इस प्रकार प्रभावित होता है कि उन्हें तत्काल संतुष्टि की आदत पड़ जाती है, जिसके कारण वास्तविक जीवन में धैर्य रखने, दूसरों की बात सुनने या परिस्थितियों से समझौता करने की आवश्यकता पड़ने पर वे अत्यधिक व्याकुल और आक्रामक हो जाते हैं। आमने-सामने के संवाद की कमी के कारण वे दूसरों के चेहरे के भावों, शारीरिक भाषा और सूक्ष्म संवेगात्मक संकेतों को पढ़ने की क्षमता खो रहे हैं, जो उनके व्यक्तित्व में संवेदनहीनता को जन्म दे रही है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल अति-निर्भरता ने विद्यार्थियों के भीतर एक प्रकार का संवेगात्मक सन्नाटा उत्पन्न कर दिया है, जिससे जब भी वे तनाव, उदासी या अकेलेपन का अनुभव करते हैं, वे अपनी भावनाओं का सामना करने या अपने अभिभावकों और मित्रों से बात करने के स्थान पर

डिजिटल स्क्रीन में शरण लेते हैं। यह पलायनवादी प्रवृत्ति उनकी संवेगात्मक परिपक्वता के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक बन रही है और वे अपनी ही भावनाओं से अनजान होते जा रहे हैं, जिसके कारण उनमें आत्म-जागरूकता का भारी अभाव देखा जा रहा है। यदि यह प्रवृत्ति इसी प्रकार बनी रही, तो भविष्य में एक ऐसा समाज निर्मित होने की आशंका है जो तकनीकी रूप से अत्यंत सक्षम होगा, परंतु संवेगात्मक रूप से अत्यंत क्षीण और संवेदनहीन होगा। राधाकृष्णन के अनुसार,.....

"*जब तक व्यक्ति अपने आंतरिक मन का नियमन करना नहीं सीखता, तब तक बाह्य ज्ञान और तकनीक केवल उसकी विचलित मनोवृत्तियों को ही बढ़ावा देती है।*"[1]

अकादमिक दबाव और निरंतर तुलनात्मक तनाव

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने प्रतिस्पर्धा को अपनी धुरी बना लिया है, जहाँ उच्च अंकों की होड़, शीर्ष संस्थानों में प्रवेश पाने की अंधी दौड़, और कॉर्पोरेट जगत की माँगों के अनुसार स्वयं को ढालने का दबाव माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर भारी पड़ रहा है। आधुनिकरण के इस युग में सफलता को केवल संख्याओं, श्रेणी और आर्थिक पैकेज के पैमाने से मापा जा रहा है, और इस संकीर्ण दृष्टिकोण ने विद्यार्थियों के मन में यह भावना घर कर दी है कि उनका मूल्य केवल उनके अकादमिक प्रदर्शन से तय होता है, जिसके कारण वे निरंतर एक अदृश्य और अंतहीन दबाव के साये में जीने के लिए विवश हैं। इस अकादमिक दबाव का सबसे घातक परिणाम यह है कि यह विद्यार्थियों के भीतर निरंतर 'तुलनात्मक तनाव' को जन्म देता है, क्योंकि डिजिटल युग में परिणाम और उपलब्धियाँ तुरंत सार्वजनिक हो जाती हैं, जिससे सामाजिक तुलना का दायरा केवल सहपाठियों तक सीमित न रहकर वैश्विक हो गया है। अभिभावकों और शैक्षणिक संस्थानों की अत्यधिक अपेक्षाएँ विद्यार्थियों में यह डर बैठा देती हैं कि यदि वे असफल हुए तो उनका जीवन व्यर्थ हो जाएगा, और यह 'विफलता का भय' उनकी मौलिक रचनात्मकता तथा सीखने की स्वाभाविक रुचि को समाप्त कर देता है। वे ज्ञान प्राप्ति के आनंद से वंचित होकर केवल परीक्षा पास करने की मशीन बनकर रह जाते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, निरंतर बना रहने वाला यह तनाव किशोरों की संवेगात्मक स्थिरता को पूरी तरह से छिन्न-भिन्न कर देता है, जिससे उनमें चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, अवसाद और आत्म-संदेह जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। जब कोई विद्यार्थी निरंतर अपनी तुलना दूसरों से करता है, तो उसके व्यक्तित्व में हीनभावना या अत्यधिक अहम्मन्यता का प्रवेश हो जाता है, जो दोनों ही संतुलित व्यक्तित्व विकास के प्रतिकूल हैं। संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति वह होता है जो अपनी क्षमताओं और सीमाओं को स्वीकार करते हुए स्व-सुधार के मार्ग पर चले, परंतु आधुनिक शिक्षा का अति-प्रतिस्पर्धी माहौल उन्हें केवल दूसरों को पछाड़ने की मानसिकता सिखा रहा है, जो उनके संवेगात्मक पतन का मुख्य कारण बन रहा है। कृष्णमूर्ति के अनुसार,.....

"*शिक्षा का कार्य मनुष्य को प्रतिस्पर्धा के अमानवीय दबाव से मुक्त कर उसे अपनी मौलिक प्रकृति को पहचानने की स्वतंत्रता देना है।*"[2]

सामाजिक माध्यम, आभासी पहचान और आत्म-सम्मान का संकट

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था के उस दौर से गुजर रहे होते हैं जहाँ 'पहचान का निर्माण' उनके मनोवैज्ञानिक विकास का मुख्य केंद्र होता है, किंतु आधुनिक शिक्षण परिवेश में स्मार्टफोन और इंटरनेट की अनिवार्य पहुँच ने विद्यार्थियों

को विभिन्न सामाजिक माध्यमों पर सक्रिय कर दिया है जहाँ वे अपनी एक काल्पनिक और आदर्शवादी छवि प्रस्तुत करने का निरंतर प्रयास करते हैं। वे अपनी वास्तविक जिंदगी की कमियों को छिपाकर केवल अपनी सुखद और आकर्षक झलकियों को ही दुनिया के सामने प्रदर्शित करते हैं, और यह आभासी पहचान धीरे-धीरे उनकी वास्तविक पहचान पर हावी होने लगती है, जिससे उनके भीतर 'आत्म-सम्मान का संकट' उत्पन्न होता है। सामाजिक माध्यमों पर मिलने वाली स्वीकृतियाँ, प्रशंसात्मक टिप्पणियाँ और डिजिटल साझाकरण उनके आत्म-मूल्य के मापदंड बन जाते हैं, और जब किसी विद्यार्थी को अपने आभासी प्रदर्शन पर अपेक्षित प्रतिक्रिया नहीं मिलती, तो वह गहरा संवेगात्मक आघात महसूस करता है। इसके विपरीत, दूसरों की संपादित और आकर्षक जीवनशैली को देखकर उनके भीतर 'छूट जाने का डर' और हीनभावना घर कर जाती है, क्योंकि वे यह भूल जाते हैं कि सामाजिक माध्यमों पर दिखने वाली दुनिया वास्तविक नहीं, बल्कि अति-संपादित और बनावटी होती है। यह स्थिति विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास को गंभीर रूप से दुष्परिणामित करती है, जिससे उनके व्यक्तित्व में 'दिखावे' और 'अनुमोदन चाहने' की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। वे आंतरिक गुणों—जैसे चरित्र, निष्ठा, और विद्वत्ता—के स्थान पर बाह्य आवरण, शारीरिक बनावट और भौतिक वस्तुओं को अधिक महत्व देने लगते हैं। संवेगात्मक रूप से वे इतने अनिश्चित हो जाते हैं कि जरा सी आलोचना या उपेक्षा उन्हें गहरे अवसाद में धकेल देती है, और उनका वास्तविक 'स्व' तथा आभासी 'स्व' के बीच का फासला इतना बढ़ जाता है कि वे स्वयं को पहचानने में असमर्थ हो जाते हैं, जो कि परिपक्व व्यक्तित्व निर्माण के मार्ग में एक बहुत बड़ा अवरोध है। गांधी के अनुसार,.....

"*यदि हम बालक के हृदय को बाह्य प्रलोभनों और मिथ्या प्रदर्शनों से बचाकर नहीं रख पाते, तो उसकी आत्मा की मौलिक पवित्रता और आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है।*"[3]

त्वरित संतुष्टि की संस्कृति और सहनशीलता का ह्रास

आधुनिकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव जीवन की गति को अत्यंत तीव्र बना दिया है, जहाँ आज एक स्पर्श पर भोजन, मनोरंजन, सूचना और सेवाएँ उपलब्ध हैं, और शिक्षा क्षेत्र में भी डिजिटल संसाधनों तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साधनों ने अध्ययन को 'त्वरित' बना दिया है। किसी भी कठिन प्रश्न का उत्तर तुरंत स्क्रीन पर उभर आता है और किसी भी समस्या का समाधान सेकंडों में मिल जाता है, यद्यपि यह तकनीकी प्रगति सुविधाजनक प्रतीत होती है, किंतु इसने माध्यमिक विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक ताने-बाने को गहराई से प्रभावित करते हुए समाज में 'त्वरित संतुष्टि की संस्कृति' को जन्म दिया है। इस संस्कृति का सबसे सीधा और घातक प्रभाव विद्यार्थियों की 'सहनशीलता' और 'धैर्य' पर पड़ा है, जबकि संवेगात्मक परिपक्वता का एक अत्यंत महत्वपूर्ण लक्षण यह होता है कि व्यक्ति कठिन परिस्थितियों में धैर्य धारण करे, लंबे समय तक प्रयास करने की क्षमता रखे, और असफलता के समय अपने संवेगों पर नियंत्रण रखे। परंतु, जब विद्यार्थियों को जीवन के हर क्षेत्र में त्वरित परिणाम देखने की आदत पड़ जाती है, तो वे उन स्थितियों का सामना करने में पूरी तरह असमर्थ हो जाते हैं जहाँ समय, लगन और निरंतर परिश्रम की आवश्यकता होती है। जब वे किसी शैक्षणिक समस्या, विषय की जटिलता या जीवन की व्यावहारिक चुनौती में तुरंत सफल नहीं होते, तो वे अत्यंत शीघ्र हताश हो जाते हैं। सहनशीलता के इस ह्रास के कारण किशोरों में आक्रामकता, क्रोध, और अवसाद की घटनाएँ तेजी से बढ़ रही हैं, क्योंकि वे किसी भी प्रकार के विलंब, बाधा या अस्वीकृति को सहन करने की क्षमता खो चुके हैं। उनके व्यक्तित्व में 'हताशा सहने की सीमा' अत्यंत निम्न स्तर पर पहुँच गई है, जिससे छोटी-छोटी असफलताएँ भी उन्हें उद्वेलित कर देती हैं और वे आक्रामक व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। व्यक्तित्व का यह

अपरिपक्व रूप उनके भविष्य के सामाजिक और व्यावसायिक जीवन के लिए अत्यंत घातक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि वास्तविक जीवन में सफलता और स्थिरता के लिए धैर्य तथा निरंतरता अनिवार्य शर्त होती है। विवेकानंद के अनुसार,.....

"*सच्चा ज्ञान और परिपक्वता रातों-रात प्राप्त नहीं होती; यह कठोर साधना, निरंतर प्रयास और अनगिनत विफलताओं को सहने की क्षमता से ही निर्मित होती है।*"[4]

मूल्यों का क्षरण और नैतिक दुविधाएँ

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा में आधुनिकरण के नाम पर पश्चिमीकरण और केवल भौतिकवादी ज्ञान का जोर बढ़ा है, जिसके कारण पारंपरिक मानवीय और नैतिक मूल्यों का निरंतर क्षरण हुआ है। आधुनिक पाठ्यक्रम में विज्ञान, गणित, और प्रौद्योगिकी को तो उच्च स्थान दिया गया है, परंतु नैतिक शिक्षा, दर्शन, और मानवीय संवेदनाओं वाले विषयों को हाशिये पर धकेल दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में बौद्धिक और तकनीकी दक्षता तो आ रही है, परंतु उनका चरित्र और नैतिक आधार अत्यंत कमजोर होता जा रहा है। नैतिक मूल्यों के अभाव में आधुनिक किशोर निरंतर 'नैतिक दुविधाओं' का सामना कर रहे हैं, क्योंकि इंटरनेट के माध्यम से वे अनियंत्रित और असीमित सूचनाओं के संपर्क में हैं, जिनमें से बहुत सी सामग्री उनके अपरिपक्व मन के लिए अनुचित और भ्रमित करने वाली होती है। सही और गलत, सत्य और असत्य, तथा उचित और अनुचित के बीच अंतर करने के लिए जिस नैतिक विवेक की आवश्यकता होती है, वह उन्हें आधुनिक शिक्षा प्रणाली से नहीं मिल पा रहा है। परीक्षा में नकल करना, कृत्रिम बुद्धिमत्ता साधनों का अनुचित उपयोग करके कार्य पूरा करना, साइबर उत्पीड़न करना, और बड़ों का अनादर करना अब उनके लिए गंभीर नैतिक अपराध न होकर केवल चतुराई का हिस्सा बनता जा रहा है। संवेगात्मक परिपक्वता और चरित्र विकास का गहरा संबंध व्यक्ति के नैतिक मूल्यों से होता है, क्योंकि एक संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति वही कहलाता है जिसका व्यवहार नैतिक सिद्धांतों पर आधारित हो और जो समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझे। जब विद्यार्थी के व्यक्तित्व में नैतिक चेतना का अभाव होता है, तो वह आत्म-केंद्रित, स्वार्थी, और अवसरवादी बन जाता है, जिससे उसमें न्याय, दया, करुणा, और ईमानदारी जैसे मूलभूत मानवीय गुणों की कमी हो जाती है। यह स्थिति न केवल उसके अपने व्यक्तित्व को खोखला बनाती है, बल्कि संपूर्ण सामाजिक ताने-बाने को विघटित करने का कार्य भी करती है। नेहरू के अनुसार,.....

"*विद्या वह है जो मनुष्य के भीतर विवेक और चरित्र का निर्माण करे; चरित्रहीन बौद्धिकता समाज के लिए केवल विनाश लाती है।*"[5]

पारिवारिक संरचना में बदलाव और संवेगात्मक सहारा प्रणाली का ह्रास

शिक्षा के आधुनिकरण और उससे जुड़ी सामाजिक-आर्थिक जीवनशैली ने पारंपरिक भारतीय पारिवारिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है, जहाँ आज संयुक्त परिवारों का विघटन हो चुका है और एकल परिवारों का प्रचलन तेज़ी से बढ़ा है। इसके साथ ही, आधुनिक जीवन की आर्थिक ज़रूरतों और आकांक्षाओं के कारण माता-पिता दोनों का कामकाजी होना आम बात हो गई है, जिससे माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी, जो अपने जीवन के सबसे उथल-पुथल भरे दौर (किशोरावस्था) से गुजर रहे होते हैं, अक्सर घर पर खुद को अकेला पाते हैं। उन्हें अपनी भावनाओं, शंकाओं, और चिंताओं को साझा करने के लिए अपनों का समय और संवेगात्मक सहारा नहीं मिल पाता। अतीत में, पारिवारिक संरचना और दादा-दादी, नाना-नानी जैसे बुजुर्गों की उपस्थिति किशोरों के लिए एक 'संवेगात्मक

सुरक्षा चक्र' का काम करती थी, जो बच्चों को कहानियों, अनुभवों, और स्नेह के माध्यम से जीवन के उतार-चढ़ावों से निपटना सिखाते थे। परंतु आज के आधुनिक परिवेश में यह संवेगात्मक सहारा प्रणाली लगभग समाप्त हो चुकी है, जहाँ माता-पिता काम के तनाव में रहते हैं और घर आने पर भी अक्सर डिजिटल उपकरणों में व्यस्त रहते हैं। जब किशोरों को अपनी संवेगात्मक समस्याओं का समाधान घर में नहीं मिलता, तो वे इसके लिए बाहरी दुनिया, इंटरनेट या अपने से ही अपरिपक्व साथियों पर निर्भर हो जाते हैं, जो अक्सर उन्हें गलत दिशा में ले जाते हैं। पारिवारिक संवाद और स्नेह की इस कमी का विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे वे स्वयं को उपेक्षित और असुरक्षित महसूस करते हैं। यह संवेगात्मक असुरक्षा उनके व्यक्तित्व में अत्यधिक आक्रामकता, अंतर्मुखता, या फिर गलत संगति के रूप में प्रकट होती है, क्योंकि जब व्यक्ति को अपनी शुरुआती अवस्था में ही शर्तहीन प्रेम और संवेगात्मक संबल नहीं मिलता, तो उसके व्यक्तित्व में एक प्रकार का स्थायी संवेगात्मक खालीपन रह जाता है, जिसे बाद में भरना अत्यंत कठिन होता है। प्रेमचंद के अनुसार,.....

" *परिवार ही वह पहली पाठशाला है जहाँ बालक प्रेम, त्याग और संवेगात्मक संतुलन का पहला पाठ सीखता है; यदि यह नीव ही कमजोर होगी तो भावी इमारत कैसे स्थिर रहेगी?'*[6]

उपभोक्तावादी संस्कृति और भौतिकवादी व्यक्तित्व का निर्माण

शिक्षा के वैश्वीकरण और आधुनिकरण ने विद्यार्थियों के विचारों को बाजारवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव में ला खड़ा किया है, जहाँ आधुनिक शिक्षण संस्थान भी अब केवल सेवा केंद्र बनकर रह गए हैं और विद्यार्थी उपभोक्ता की भांति व्यवहार कर रहे हैं। इस व्यावसायिक परिवेश में पली-बढ़ी किशोर पीढ़ी का ध्यान 'होने' से हटकर 'स्वामित्व रखने' पर केंद्रित हो गया है, जिसके कारण उनके व्यक्तित्व का विकास आंतरिक मूल्यों के स्थान पर बाह्य भौतिक वस्तुओं—जैसे महंगे डिजिटल उपकरण, ब्रांडेड कपड़े, और भव्य जीवनशैली—के आधार पर होने लगा है। यह उपभोक्तावादी मानसिकता विद्यार्थियों के भीतर एक अतृप्त तृष्णा और निरंतर असंतोष को जन्म देती है, जिससे वे सदैव उन चीज़ों की चाहत में रहते हैं जो उनके पास नहीं हैं, और जब उनकी ये भौतिक आकांक्षाएँ पूरी नहीं होतीं, तो वे संवेगात्मक रूप से अस्थिर हो जाते हैं। उनमें अपनी परिस्थितियों के प्रति कृतज्ञता का भाव समाप्त हो जाता है और वे निरंतर शिकायत करने की मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं। इस भौतिकवादी दौड़ में, वे यह समझने में पूरी तरह असफल रहते हैं कि वास्तविक सुख, मानसिक शांति और संवेगात्मक परिपक्वता आंतरिक संतोष और मानवीय संबंधों से आती है, न कि वस्तुओं के संग्रह से। व्यक्तित्व विकास पर इसका दुष्परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों में संवेदनहीनता और उपयोगितावादी दृष्टिकोण बढ़ जाता है, जिससे वे मानवीय संबंधों को भी 'लाभ और हानि' के चश्मे से देखने लगते हैं। साथियों के साथ उनकी मित्रता भी निस्वार्थ न होकर प्रदर्शन और स्वार्थ पर आधारित हो जाती है, और जब किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व पूरी तरह से भौतिकवादी बन जाता है, तो उसमें सहानुभूति, करुणा, और आत्म-त्याग जैसे उच्च संवेगात्मक गुणों का क्षय हो जाता है, जिससे ऐसा व्यक्ति जीवन के वास्तविक संकटों और असफलताओं का सामना करने में अत्यंत कमजोर साबित होता है। टैगोर के अनुसार,.....

" *भौतिक समृद्धि का अतिशय प्रलोभन मनुष्य की आत्मा को सुप्त कर देता है और उसे अपनी वास्तविक सत्ता से दूर ले जाता है।*"[7]

'सहकर्मी दबाव' और पहचान का संकट

किशोरावस्था में सहकर्मियों या साथियों का प्रभाव अत्यंत तीव्र होता है, और आधुनिकरण के इस दौर में यह दबाव कई गुना अधिक बढ़ गया है क्योंकि अब यह केवल कक्षा या खेल के मैदान तक सीमित न रहकर चौबीसों घंटे सामाजिक माध्यमों के समूहों और डिजिटल मंचों के माध्यम से मौजूद रहता है। माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी निरंतर इस दबाव में रहते हैं कि वे अपने साथियों के समूह में स्वीकार किए जाएँ, लोकप्रिय हों और उनके जैसे दिखें, और इस स्वीकृत होने की तीव्र इच्छा के कारण वे अक्सर अपनी मौलिकता और विचारों की बलि चढ़ा देते हैं। यह स्थिति विद्यार्थियों के भीतर एक गंभीर 'पहचान के संकट' को जन्म देती है, क्योंकि वे स्वयं से यह प्रश्न पूछना भूल जाते हैं कि वे वास्तव में कौन हैं, उनकी अपनी रुचियाँ क्या हैं और उनके अपने मूल्य क्या हैं। इसके बजाय, वे वही बनने का नाटक करते हैं जो उनका समूह उनसे अपेक्षा करता है, जहाँ आवरण शैली, भाषा, व्यवहार, और यहाँ तक कि आजीविका के चयन में भी वे आँख मूँदकर अपने साथियों का अनुकरण करते हैं। इस अंधानुकरण की प्रक्रिया में, जब उनकी आंतरिक प्रकृति और बाह्य आचरण में टकराव होता है, तो वे भीषण आंतरिक संवेगात्मक द्वंद्व और तनाव से भर जाते हैं। संवेगात्मक परिपक्वता का एक मुख्य आधार 'स्वायत्तता' और 'दृढ़ता' है—अर्थात गलत बात के लिए 'ना' कहने की क्षमता होना और अपने सिद्धांतों पर कायम रहना—परंतु, सहकर्मी दबाव के कारण आधुनिक विद्यार्थी गलत प्रवृत्तियों का विरोध नहीं कर पाते, केवल इसलिए कि कहीं वे अपने समूह से अलग न थलग पड़ जाएँ। यह संवेगात्मक दुर्बलता उनके व्यक्तित्व को कमजोर बनाती है और उन्हें एक स्वतंत्र, आत्म-विश्वास से भरपूर, और परिपक्व वयस्क बनने से रोकती है। अरविंदो के अनुसार,.....

"*दूसरे के जीवन का अनुकरण करके अपने सत्य को खो देना ही मनुष्य का सबसे बड़ा पतन है; अपनी मौलिकता में जीना ही सच्चा आत्म-विकास है।*"[8]

जीवन कौशलों और व्यावहारिक ज्ञान का अभाव

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सूचनाओं का विशाल भंडार तो मौजूद है, परंतु इसमें 'जीवन कौशलों' का भारी अभाव है, जहाँ माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को कठिन से कठिन तकनीकी और सैद्धांतिक विषय तो पढ़ाए जा रहे हैं, परंतु उन्हें यह नहीं सिखाया जा रहा है कि अपनी दैनिक जिंदगी के तनावों से कैसे निपटें, अपनी भावनाओं का प्रबंधन कैसे करें, अंतर-वैयक्तिक संबंधों को कैसे बनाए रखें, और कठिन समय में निर्णय कैसे लें। शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से 'अकादमिक केंद्रित' हो गई है, 'जीवन केंद्रित' नहीं, और इस कमी का सीधा दुष्परिणाम यह है कि विद्यार्थी किताबी ज्ञान में तो अत्यंत कुशल होते हैं, परंतु जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के सामने पूरी तरह लाचार और असहाय सिद्ध होते हैं। उनमें 'संवेगात्मक बुद्धिमत्ता' का विकास नहीं हो पाता, जिससे जब उन्हें वास्तविक जीवन में किसी जटिल परिस्थिति, असफलता, या संघर्ष का सामना करना पड़ता है, तो उनका सारा किताबी ज्ञान धरा का धरा रह जाता है और वे मानसिक रूप से टूट जाते हैं। उनमें समस्याओं का व्यावहारिक समाधान खोजने की क्षमता और संवेगात्मक लचीलापन विकसित नहीं हो पाता। व्यवहार में यह देखा गया है कि आधुनिक उच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी भी अक्सर व्यावहारिक बातचीत, तनाव प्रबंधन, और अनिश्चितता का सामना करने में अत्यंत कच्चे होते हैं, क्योंकि उनमें 'अनुकूलनशीलता' की कमी होती है। संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति वह है जो अनिश्चित और कठिन परिस्थितियों में भी अपना आपा न खोए और व्यावहारिक समझ से काम ले, परंतु आधुनिक शिक्षा विद्यार्थियों को एक एकांगी व्यक्तित्व प्रदान कर रही है, जो परीक्षा की उत्तरपुस्तिका पर तो बहुत अच्छा प्रदर्शन कर सकता है, किंतु जीवन की वास्तविक परीक्षा में संवेगात्मक अपरिपक्वता के कारण पिछड़ जाता है। कलाम के अनुसार,.....

"केवल बुद्धि को शिक्षित करना और हृदय को अशिक्षित छोड़ देना, वास्तव में शिक्षा का सबसे बड़ा एकांगीपन और अभिशाप है।"[9]

शारीरिक स्वास्थ्य, खेलकूद का ह्रास और संवेगात्मक संतुलन

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान यह सिद्ध करते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है और शारीरिक गतिविधियाँ संवेगात्मक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, किंतु माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा के आधुनिकरण ने विद्यार्थियों के खेलकूद और शारीरिक गतिविधियों के समय को पूरी तरह छीन लिया है। कक्षाओं की लंबी अवधि, ऑनलाइन गृहकार्य का दबाव, और स्क्रीन पर अत्यधिक समय बिताने के कारण विद्यार्थी पूरी तरह से निष्क्रिय जीवनशैली अपनाने के लिए मजबूर हो गए हैं, जिससे खुले मैदानों में जाकर खेलने की परंपरा आधुनिक शहरी शिक्षण परिवेश से लगभग गायब हो चुकी है। खेलकूद केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ही आवश्यक नहीं हैं, बल्कि वे संवेगात्मक परिपक्वता और व्यक्तित्व विकास की बहुत बड़ी प्रयोगशाला होते हैं जहाँ खेल के मैदान में विद्यार्थी हार और जीत दोनों को स्वीकार करना सीखता है तथा समूह कार्य, सहयोग, नेतृत्व, और दबाव की स्थिति में शांत रहना सीखता है। जब विद्यार्थी शारीरिक रूप से सक्रिय रहता है, तो उसके शरीर में प्रसन्नता प्रदान करने वाले जैविक रसायनों का स्राव होता है, जो तनाव, चिंता और अवसाद को प्राकृतिक रूप से कम करते हैं, परंतु शारीरिक गतिविधियों के अभाव में विद्यार्थियों का यह प्राकृतिक संवेगात्मक निकास बंद हो गया है। इसके परिणामस्वरूप, विद्यार्थियों में शारीरिक रूप से स्थूलता, आलस्य, और असमय बीमारियाँ बढ़ रही हैं, तो वहीं मानसिक रूप से उनका संवेगात्मक संतुलन बिगड़ रहा है, जिससे उनका रुका हुआ तनाव आक्रामकता, अवसाद, और चिड़चिड़ेपन के रूप में बाहर निकलता है। वे छोटी-छोटी बातों पर अपना आपा खो देते हैं, जबकि एक संतुलित और परिपक्व व्यक्तित्व के निर्माण के लिए शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक तीनों आयामों का सामंजस्य आवश्यक है। आधुनिक शिक्षा द्वारा केवल संज्ञानात्मक विकास पर जोर देना और शारीरिक-संवेगात्मक पहलू को पूरी तरह नज़रअंदाज़ करना एक अत्यंत खतरनाक स्थिति को जन्म दे रहा है। गोखले के अनुसार,.....

"शरीर को सबल और सक्रिय बनाए बिना मन की एकाग्रता और संवेगों की स्थिरता प्राप्त करना असंभव है; खेल का मैदान जीवन का पहला पाठ सिखाता है।"[10]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विस्तृत विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा में आधुनिकरण के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता और व्यक्तित्व विकास के सम्मुख अत्यंत गंभीर और जटिल चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आधुनिक तकनीक, वैश्वीकृत पाठ्यक्रम और डिजिटल संसाधनों ने विद्यार्थियों के लिए ज्ञान के नए क्षितिज खोले हैं और उन्हें वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाया है, किंतु इस आधुनिकरण की सबसे भारी कीमत विद्यार्थियों ने अपने संवेगात्मक संतुलन, मानसिक शांति, नैतिक मूल्यों और समग्र व्यक्तित्व की बलि देकर चुकाई है। शिक्षा का जो मूल उद्देश्य—'सा विद्या या विमुक्तये' (विद्या वही है जो मुक्त करे)—था, वह आज केवल 'सा विद्या या नियुक्तये' (विद्या वही है जो रोजगार दे) या उससे भी संकीर्ण होकर केवल 'उच्च अंक प्राप्त करने' तक सीमित होकर रह गया है। डिजिटल अति-निर्भरता, अत्यधिक अकादमिक दबाव, सामाजिक माध्यमों का दुष्चक्र, सहनशीलता का ह्रास, और पारिवारिक संवेगात्मक सहारे का टूटना ऐसे कारक हैं जिन्होंने हमारी नई पीढ़ी को संवेगात्मक रूप से अत्यंत नाजुक और अपरिपक्व

बना दिया है, और यदि इस स्थिति पर शीघ्र ही ध्यान नहीं दिया गया, तो हम एक ऐसे समाज का निर्माण करेंगे जो तकनीकी रूप से तो अत्यंत उन्नत होगा, परंतु संवेगात्मक रूप से अत्यंत विघटित, असहिष्णु और अवसादग्रस्त होगा। इस संकट से निकलने का एकमात्र मार्ग यह है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली में 'प्रौद्योगिकी और मानवीय मूल्यों' तथा 'अकादमिक उत्कृष्टता और संवेगात्मक बुद्धिमत्ता' के बीच एक स्वस्थ और विवेकपूर्ण संतुलन स्थापित करें। शिक्षा में आधुनिकरण का अर्थ यह कदापि नहीं होना चाहिए कि हम अपनी सांस्कृतिक जड़ों, नैतिक चेतना और मानवीय संवेदनाओं को त्याग दें, बल्कि भारतीय शिक्षा दर्शन के समृद्ध ज्ञान-भंडार को आधुनिक शिक्षण पद्धतियों के साथ एकीकृत करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। विद्यालयों और अभिभावकों को मिलकर एक ऐसा वातावरण निर्मित करना होगा जहाँ विद्यार्थियों को केवल उनकी अंक-तालिका से न परखा जाए, बल्कि उन्हें अपनी भावनाओं को समझने, अभिव्यक्त करने, और उनसे निपटने का सुरक्षित अवसर मिले, क्योंकि जब तक हम अपनी भावी पीढ़ी को संवेगात्मक रूप से परिपक्व, सहनशील और मूल्य-निष्ठ नागरिक नहीं बनाएंगे, तब तक किसी भी प्रकार का शैक्षिक या तकनीकी आधुनिकरण अधूरा और अर्थहीन ही रहेगा।

संदर्भ

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. मानव मन और संवेगात्मक परिपक्वता. मोतीलाल बनारसीदास, 2019, पृष्ठ 114.
2. कृष्णमूर्ति, जिद्दु. शिक्षा क्या है?. अनुवादक कृष्णनाथ, के.एफ.आई. पब्लिकेशंस, 2020, पृष्ठ 87.
3. गांधी, मोहनदास कर्मचंद. मेरे सपनों का भारत और नई तालीम. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 2017, पृष्ठ 102.
4. विवेकानंद, स्वामी. शिक्षा तथा उसका चरित्र-निर्माणकारी स्वरूप. रामकृष्ण मठ प्रकाशन, 2022, पृष्ठ 65.
5. नेहरू, जवाहरलाल. भारत की खोज और आधुनिक शिक्षा. सस्ता साहित्य मंडल, 2018, पृष्ठ 156.
6. प्रेमचंद, मुंशी. साहित्य का उद्देश्य और शिक्षा. वाणी प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 53.
7. टैगोर, रवींद्रनाथ. शिक्षा और संस्कृति. ग्रन्थ शिल्पी, 2016, पृष्ठ 78.
8. अरविंदो, श्री. भारतीय शिक्षा का भावी स्वरूप. अनुवादक रमेशचंद्र शाह, राजकमल प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 94.
9. कलाम, ए. पी. जे. अब्दुल. मेरे सपनों का भारत. प्रभात प्रकाशन, 2019, पृष्ठ 121.
10. गोखले, गोपाल कृष्ण. भारत में शिक्षा और समाज सुधार. नेशनल बुक ट्रस्ट, 2015, पृष्ठ 48.